॥ॐ॥
॥श्री परमात्मने नमः ॥
॥श्री गणेशाय नमः॥

॥ हारीत स्मृतिः॥

श्री प्रभु के चरणकमलों में समर्पित:

श्री मनीष त्यागी
संस्थापक एवं अध्यक्ष
श्री हिंदू धर्म वैदिक एजुकेशन फाउंडेशन

॥ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

विषय अनुक्रमणिका

प्रथमोऽध्यायः प्रथम अध्याय 3

द्वितीयोऽध्यायः द्वितीय अध्याय 13

तृतीयोऽध्यायः तृतीय अध्याय 18

चतुर्थोऽध्यायः चतुर्थअध्याय 23

पञ्चमोऽध्यायः पांचवां अध्याय 45

षष्ठोऽध्यायः छठा अध्याय 48

सप्तमोऽध्यायः सातवाँ अध्याय 55

॥ॐ॥
॥श्री परमात्मने नमः ॥
॥श्री गणेशाय नमः॥

॥हारीत स्मृतिः॥

प्रथमोऽध्यायः प्रथम अध्याय

यहां से हारीतस्मृतिका आरम्भ है इसमें हारीतशिष्य और अन्यान्य ऋषियों का संवाद है। ऋषियों का प्रश्न

ये वर्णाश्रमधर्मस्थास्ते भक्ताः केशवं प्रति ।
इति पूर्व त्वया प्रोक्तं भूर्भुवःस्वद्विजोत्तम ॥ १ ॥

भूः भुवः और स्वर्गलोकमें स्थित जिन सम्पूर्ण द्विजश्रेष्ठों ने वर्णाश्रम धर्म को अवलम्बन किया, वह केशव भगवान के भक्त हैं यह आपने पहले कहा था ॥१॥

वर्णानामाश्रमाणां च धर्मानो हि सत्तम ॥
येन संतुष्यते देवो नारसिंहः सनातनः ॥ २ ॥

इस समय वर्ण और आश्रम का धर्म आप हमसे कहिए, जिससे सनातन नरसिंह देव सन्तुष्ट हों ॥२॥

अत्राहं कथयिष्यामि पुरावृत्तमनुत्तमम् ॥
ऋषिभिः सह संवादं हारीतस्य महात्मनः॥३॥

यह सुनकर हारीत शिष्य ने उत्तर दिया कि मैं इस समय पूर्वकाल में ऋषियों के साथ महात्मा हारीत का जो अति उत्तम संवाद हुआ था वह आपसे कहूंगा ॥३॥

हारीतं सर्वधर्मज्ञमासीनमिव पावकम् ॥
प्रणिपत्याववन्सः मुनयो धर्म कोक्षिणः॥४॥

पूर्वकालमें धर्म के ज्ञाता सम्पूर्ण मुनि सब धर्मों के जाननेवाले अग्नि की समान दीप्तिमान बैठे हुए हारीत ऋषि को नमस्कार करके पूछते हुए कहा ॥ ४ ॥

भगवन्सर्वधर्मज्ञ सर्वधर्मप्रवर्तक ॥
वर्णानामाश्रमाणां च धर्मानो हि भार्गव ॥५॥

कि हे भार्गव ! हे सर्वधर्मज्ञ ! हे सर्वधर्मप्रवर्तक भगवन् ! हमसे वर्ण और आश्रमों के धर्मको कहिये ॥५॥

समासाचोगशास्त्रं च विष्णुभक्तिकरं परम् ॥

एतच्चान्यच्च भगवहि नः परमो गुरुः ॥ ६॥

और संक्षेप से विष्णु भक्तिकारक योगशास्त्र और जो अन्यान्य विष्णु भक्ति है उसे भी आप कहिये, क्योंकि आप हम सबके परमगुरु हों ॥६॥

हारीतस्तानुवाचाथ तैरेवं चोदितो मुनिः ॥
शृण्वन्तु मुनयः सर्व धर्मान्व क्ष्यामि शाश्वतान् ॥७॥

मुनियों के इस प्रकार पूछनेपर भगवान् हारीत मुनिने उत्तर दिया कि हे सज्जनश्रेष्ठ मुनि गण ! मैं वर्ण और आश्रमसमूह का नित्य धर्म योगशास्त्र कहता हूँ ॥ ७ ॥

वर्णानामाश्रमाणां च योगशास्त्रं च सत्तमाः ॥
सन्धार्य मुच्यते मयों जन्मसंसारबंधनात् ॥ ८ ॥

इस धर्म और योगशास्त्र को भलीभांति जानकर मनुष्य जन्म संसार के बंधन से छूट जाताहै ॥ ८॥

पुरा देवो जगत्वष्टा परमात्मा जलोपरि ॥
सुष्वाप भोगिपर्यके शयने तु श्रिया सह ॥ ९ ॥

पूर्व कालमै सृष्टिके रचनेवाले जलके अपर लक्ष्मीके सहित शेषकी शय्यापर परमात्मा देव भगवान विष्ण योगनिद्रामें मग्न थे ॥९॥

तस्य सुप्तस्य नाभौ तु महत्पद्ममभूकिल ॥
पद्ममध्येऽभवब्रह्मा वेदवेदांगभूषणः ॥ १० ॥

उन सोतेहुए भगवान की नाभि से एक बडा कमल उत्पन्न हुआ, उस कमल के बीच मे से वेद वेदांगों के भूषण ब्रह्माजी उत्पन्न हुए ॥१०॥

स चोक्तो देवदेवेन जगत्सृज पुनःपुनः॥
सोपि सृष्ट्वा जगत्सर्व सदेवासुरमानुपम् ॥ ११ ॥

देवादिदेव भगवान् विष्णुजी ने उनसे बारम्बार जगतकी सृष्टि रचनेके लिये कहा; तब ब्रह्माजीने भी देवता, असुर, मनुष्य इनके सहित सम्पूर्ण जगत को रचकर ॥११॥

यज्ञसिद्ध्यर्थमनधान्ब्राह्मणा न्मुखतोऽसृजत् ॥
अमृजक्षत्रियान्वाहविश्यानप्यूरदेशतः ॥ १२ ॥

यज्ञ की सिद्धि के लिये पापरहित ब्राह्मणोंको मुख से उत्पन्न किया, इसके पीछे क्षत्रियोंको भुजांओं से और वैश्यों को जंघाओं से रचा ॥ १२ ॥

शदांश्च पादयोः सृष्ट्वा तेपां चैवानुपूर्वशः ।
यथा प्रोवाच भगवान्यायोनिः पितामहः ॥ १३ ॥

तचः संप्रवक्ष्यामि शृणुत द्विजसत्तमाः ॥
धन्यं यशस्यमायुष्यं स्वयं मोक्षफलपदम् ॥ १४ ॥

और शूद्रों को चरणोंसे रचकर भगवान् पद्मयोनि ने उनसे जो वचन कहे, हे द्विजोत्तमो ! उन वचनों को मैं तुमसे कहता हूँ तुम श्रवण करो, और वह वचन धन, यश, अवस्या, स्वर्ग, मोक्ष फल, इनके देनेवाले हैं ॥१३-१४॥

ब्राह्मण्यो ब्राह्मणेनैवमुत्पन्नो ब्राह्मणः स्मृतः ॥
तस्य धर्म प्रवक्ष्यामि तद्योग्यं देशमेव च ॥ १५॥

ब्राह्मणी के गर्भ में ब्राह्मण के औरस से उत्पन्न हुआ मनुष्य ही ब्राह्मण कहलाता है; उसके धर्म और उसके रहने योग्य देश को कहता हूँ ॥१५॥

कृष्णसारो मृगो यत्र स्वभावेन प्रवर्त्तते ॥
तस्मिन्देशे वसेद्धर्माः सिद्धयंति द्विजसत्तमाः ॥ १६ ॥

हे! द्विजसत्तमगण ! जिस देश में काला मृग स्वभाव से ही विचरण करे उस देश में ब्राह्मण निवास करै, कारण किं किये हुये धर्म उसी देशमें सिद्ध होते हैं ॥१६॥

षट्कर्माणि निजान्याहाह्मणस्य महात्मनः ॥
तैरेव सततं. यस्तु वर्तयेसुखमे धते ॥ १७ ॥

महात्मा ब्राह्मणों के अपने छह कर्म कहे हैं; जो उन छह प्रकार के काम से निरन्तर जीवन व्यतीत करता है, वही सुखी होताहै, अर्थात् धनवान् और पुत्रवान होता है ॥१७॥

अध्यापनं चाध्ययनं याननं यननं तथा ॥
दानं प्रतिग्रहश्चेति षट्कर्माणीति प्रोच्यते ॥ १८ ॥

पढाना, पढना, यज्ञ कराना, यज्ञ करना, दान और प्रतिग्रह यह छह प्रकार के कर्म कहे हैं ॥ १८॥

अध्यापनं च त्रिविधं धर्मार्थमृक्थकारणात् ॥
शुश्रूपाकरणं चेति त्रिविधं परि कीर्तितम् ॥ १९ ॥

इनमें पढाना तीन प्रकार का है पहला धर्म के निमित्त दूसरा धन के निमित्त, और तीसरा सेवा शुश्रूषा के लिये ॥१९॥

एषामन्यतमाभावे वृथाचारो भवेद्विजः ॥
तत्र विद्या न दातव्या पुरुषेण हितैपिणा ॥ २० ॥

जो ब्राह्मण इन तीनों मे से एक को भी नहीं करता वह वृथा चारी कहालाता है, ऐसे कर्महीन ब्राह्मण को हित का अभिलाषी मनुष्य कभी विद्यादान न करे ॥२०॥

योग्यानध्यापयेच्छिष्यानयोग्यानपि वर्जयेत् ॥

विदितात्प्रतिगृह्णीयाट्टहे धर्मप्रसिद्धये ॥ २१ ॥

योग्य शिष्य को विद्या पढाए और अयोग्य शिष्यको त्याग देना ही उचित है, विदित अर्थात् निष्पाप मनुष्य को जानकर मनुष्य के निकट से गृहस्थधर्म की सिद्धि के लिये प्रतिग्रह ले ॥२१॥

वेदश्चैवाभ्यसेन्नित्यं शुचौ देशे समाहितः ॥
धर्मशास्त्रं तथा पाठयं ब्राह्मणैः शुद्धमानसैः ॥ २२ ॥

प्रतिदिन शुद्ध देश में सावधान होकर वेद का अभ्यास करे, और शुद्ध मनवाले ब्राह्मणों से सर्वदा धर्मशास्त्र पढना उचित है ॥२२॥

वेदवत्पठितव्यं च श्रोतव्यं च दिवानिशि ॥
स्मृतिहीनाय विप्राय श्रुतिहीने तथैव च ॥२३ ॥

धर्मशास्त्र भी वेद की समान ही पढना उचित है, रात दिन धर्मशास्त्रको सुनना चाहिये। श्रुति स्मृति इन दोनों से हीन ब्राह्मण को ॥२३ ॥

दानं भोजनमन्यच्च दत्तं कुल विनाशनम् ॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन धर्मशास्त्रं पठेदिनः ॥ २४ ॥

जो दान देता है, या जो भोजन कराता है, उस दान और भोजनादि कर्म से दाता का कुल नष्ट हो जाता है। इस कारण ब्राह्मण को सब प्रकार से यत्नसहित धर्मशास्त्र को पढना चाहिए ॥२४॥

श्रुतिस्मृती व विप्राणां चक्षुषी देवनिम्मिते ।।
काणस्तत्रैकया हीनो दाभ्यामन्धः प्रकीर्तितः ॥२५ ॥

श्रुति और स्मृति ब्राह्मण के दोनों नेत्र परमेश्वर के बनाये हुए हैं। इन श्रुति अथवा स्मृतिरूप एक नेत्र के बिना वह काना है, और श्रुति स्मृति रूप दोनों से जो हीन है उसे अंधा कहा है ॥२५॥

गुरुशुश्रूषणं चैव यथान्यायमतंद्रितः ॥
सायंप्रातरुपासीत विवाहाग्निं दिजोत्तमः ॥ २६ ॥

सुस्तातस्तु प्रकुर्वांत वैश्वदेवं दिनदिने ॥
अतिथीनागता छत्तपा पूजयेदविचारतः ॥ २७ ॥

और भली भांतिसे स्नान करके प्रतिदिन ही बलि वैश्वदेव कर और अपनी शक्ति के अनुसार घर पर आए हुए अतिथियों की बिना विचार किये हुए अर्थात् यह गुणवान है अथवा नहीं इस बात का विचार नहीं करके सैदैव पूजा करनी चाहिए ॥२६-२७॥

अन्यानभ्यागतान्विप्रान्पूजयेच्छक्तितो गही ॥
स्वदारनिरतो नित्यं परदारविवर्जितः ॥ २८ ॥

और अन्य अभ्यागदों की भी गृहस्थी ब्राह्मण को अपनी शक्ति के अनुसार पूजा करनी चाहिए, और सर्वदा अपनी स्त्री में ही रत रह कर पराई स्त्री को त्याग देन चाहिए ॥ २८ ॥

कृतहोमस्तु भुजीत सायंप्रातरुदारधीः ॥
सत्यवादी जितक्रोधो नाधम्र्मे वर्तयेन्मतिम् ॥ २९ ॥

आलस्यरहित होकर गुरूकी सेवा करनी चाहिए और प्रात:काल और संध्याकाल में विवाहाग्नि की उपासना करनी चाहिए ॥ २६ ॥

स्वकर्मणि च संप्राप्ते प्रमादान निवर्त्तते ॥
सत्यां हितां वदेदाचं परलोकहितैषिणीम् ॥ ३० ॥

उदार बुद्धिवाले मनुष्य को सायंकाल और प्रातःकाल में होम करके भोजन करना चाहिए, सत्य बोलन चाहिए, क्रोध को जीतना चाहिए और अधर्म बुद्धि का त्याग कर देना चाहिए ॥२९॥

एष धर्मः समुदिष्टो ब्राह्मणस्य समासतः ॥
धर्ममेव हि यः कुर्यात्स याति ब्रह्मणः पदम् ॥ ३१ ॥

अपने कर्म के समय में प्रमाद से कर्म को नहीं छोड़ना चाहिए और सत्य हितकारी तथा परलोक में सुख प्रदान करने वाली वाणी को कहना चाहिए ॥३०॥

इत्येष धर्मः कथितो मयायं पृष्टो भवद्भिस्त्वखिलापहारी॥

यह संक्षेप से ब्राह्मणोंका धर्म कहा; जो ब्राह्मणं सर्वदा धर्माचरण करते हैं वह ब्रह्मपद अर्थात् मुक्ति को प्राप्त करते हैं ॥३१॥

वदामि राज्ञामपि चैव धान्पृथक्पृथग्वोधत विप्रवाः ॥ ३२ ॥

हे द्विजोत्तमो ! जो धर्म तुमने मुझसे पूछा था वह सम्पूर्ण पापों का नाश करनेवाला धर्म मैने तुमसे कहा; अब राजाओं के भी पृथक् पृथक धर्मों को कहता हूँ, तुम श्रवण करो ॥ ३२ ॥

इति हारीते धर्मशास्त्रे प्रथमोऽध्यायः ॥ १॥

हारीत स्मृतिः का पहला अध्याय समाप्त हुआ ॥१॥

द्वितीयोऽध्यायः द्वितीय अध्याय

क्षत्रादीनां प्रवक्ष्यामि यथावदनुपूर्वशः॥
येषु प्रवृत्ता विधिना सर्वे यान्ति परां गतिम् ॥ १॥

क्रमानुसार क्षत्रिय वैश्य और शूद्र इन तीनों के धर्मोको कहता हूँ, जिन धर्मों के आचरण करने से क्षत्रिय आदि तीन वर्ण उत्तम गति को प्राप्त होते हैं ॥१॥

राज्यस्थः क्षत्रियश्चापि प्रजा धर्मेण पालयन्॥
कुर्यादध्ययनं सम्पग्यजद्यज्ञान्यथाविधि ॥ २ ॥

क्षत्रिय राजसिंहासन पर स्थित होकर भी धर्म के अनुसार प्रजापालन कर भली भांति से वेद पढने चाहिए, और विधि सहित यज्ञों को करना चाहिए ॥२॥

दद्यादानं द्विजातिभ्यो धर्मबुद्धिसमन्वितः ॥
स्वभार्यानिरतो नित्यं षड्भागार्हः सदा नृपः ॥ ३ ॥

जो राजा सर्वदा धर्म में बुद्धि रखकर ब्राह्मणों को दान देता है, और जो नित्य अपनी स्त्री में ही रत रहता है, वह राजा सदैव छठे भाग को लेने का अधिकारी होता है ॥३॥

नीतिशास्त्रार्थकुशलः सन्धिविग्रहतत्त्ववित् ॥
देवब्राह्मणभक्तश्च पितृकार्यपरस्तथा ॥ ४॥

नीतिशास्त्र में कुशल और संधि- विग्रह इनके तत्त्व को भी राजा को जानना चाहिए। देवता और ब्राह्मणोंमें भक्ति रखनी चाहिए और पितरों के कार्य में भी तत्पर रहना चाहिए॥ ४ ॥

धर्मेण यजनं कार्यमधर्मपरिवर्जनम् ॥
उत्तमां गतिमाप्नोति क्षत्रियोऽप्येवमाचरन् ॥५॥

धर्म से यज्ञ करना चाहिए और अधर्म को त्याग देना ही उचित है, इन पूर्वोक्त कर्मों को करने से क्षत्रिय को उत्तम गति प्राप्त होती है ॥५॥

गोरक्षा कृषिवाणिज्यं कुर्यादैश्यो यथाविधि॥
दानं देयं यथाशक्त्या ब्राह्मणानां च भोजनम् ॥ ६ ॥

वैश्य का यह धर्म है कि: गौओं की रक्षा करे, खेती और वाणिज्य करे, यथाशक्ति दान और ब्राह्मणों को भोजन कराए ॥ ६॥

दंभमोहविनिर्मुक्तः सत्यवागनसूयकः ॥
वदारनिरतो दान्तः परदारविवर्जितः ॥ ७ ॥

वैश्य दंभ और मोहरहित वाक्यों के द्वारा दूसरे से ईर्षा नहीं करे, अपनी स्त्री में रत रहे, और पराई स्त्रीको त्याग दे ॥७॥

धनैर्विप्रान्भोजयित्वा यज्ञकाले तु याजकान् ॥
अप्रभुत्वं च वर्तेत धर्म चादेहपातनात् ॥ ८॥

धनसे ब्राह्मणों को और यज्ञ के समय ऋत्विजों को तृप्त कर मृत्युकाल तक धर्म में अपनी प्रभुताई न चलाकर समय व्यतीत करे ॥८॥

यज्ञाध्ययनदानानि कुर्य्यात्रि त्यमतन्द्रितः ॥
पितृकार्यपरश्चैव नरसिंहानापरः ॥ ९ ॥

और प्रतिदिन आलस्य को छोडकर यज्ञ, अध्ययन और दान करे, और पितरों के कार्य -श्राद्ध आदि और भगवान् नरसिंहजी के पूजन में तत्पर रहे ॥९॥

एतद्देश्यस्य धर्मीयं स्वधर्ममनुतिष्ठति ॥
एतदाचरते यो हि स स्वर्गी नात्र संशयः ॥१०॥

यह वैश्य का धर्म है। धर्मानुष्ठान में रत हुआ जो वैश्य इसके अनुसार धर्माचरण करता है, वह स्वर्ग में जाता है इसमें संदेह नहीं हैं ॥१०॥

वर्णत्रयस्य शुश्रूषां कुर्य्याच्छूद्रः प्रयत्नतः ॥
दासवद्राह्मणानाञ्च विशेषेण समा चरेत् ॥११॥

शूद्रका यही धर्म है कि वह यत्नपूर्वक ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य इनकी सेवा कर और विशेष रूप से ब्राह्मणों की तो दास के समान सेवा करे ॥ ११ ॥

अयाचितमदाता च कष्टं वृत्त्यर्थमाचरेत् ॥
पाक्यज्ञविधानेन यजेदेवमतन्द्रितः ॥१२॥

बिना माँगे अपनी सेवाएँ दे, और अपनी जीविका निर्वाह के लिये कष्ट सहन करें, और पाकयज्ञ की विधि से आलस्य को छोडकर देवताओं की पूजा करे ॥१२॥

शूदाणामधिकं कुर्यादईने न्यायवर्तिनाम् ॥
धारणं जीर्णवस्त्रस्य विपस्योच्छिष्टभोजनम् ॥१३॥

और न्याय में तत्पर हुए शुद्र का भी पूजन अधिकता से करे, मन वचन और शरीर को क्रिया से, सर्वदा जीर्ण वस्त्रों का धारण करे, और ब्राह्मणों का उच्छिष्ट भोजन करे ॥१३॥

स्वंदारेषु रतिश्चैव पर दारविवर्जनम् ॥
इत्थं कुर्यात्सदा शूदो मनोवाकायकर्मभिः ॥१४॥

अपनी स्त्रियों में ही रमण करे और पराई स्त्री को त्याग दे, मन, वचन, कर्म, और देह से शूद्र इसी प्रकार करता रहे ॥१४॥

स्थानमैन्द्रमवामोति नष्टपापः सुपुण्यकृत् ॥ १५॥ .

इन सब कर्मों के करने से सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं, और पुण्य के प्रभाव से शूद्र इंद्र के स्थान को प्राप्त हो जाता है ॥१५॥

वर्णेषु धर्मा विविधा मयोक्ता यथा तथा ब्रह्ममुखरिताः पुरा ॥
शृणुध्वमत्राश्रमधर्ममायं मयोच्यमानं क्रमशो मुनींदाः ॥१६॥

पूर्वकाल में जिस प्रकार ब्रह्माजी ने कहा था, वही मैंने तुमसे सब वर्णों के यथार्थ धर्म कहे हैं, हे मुनीन्द्रों ! इस समय मैं सनातन आश्रमधर्म को कहता हूं,आप क्रमानुसार श्रवण करो॥१६॥

इति हारीते धर्मशास्त्रे द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

हारीत स्मृतिः का दूसरा अध्याय समाप्त हुआ ॥२॥

तृतीयोऽध्यायः तृतीय अध्याय

उपनीतो माणवको वसेद्गुरुकुलेषु च ॥
गुरोः कुले प्रियं कुर्यात्कर्मणा मनसा गिरा ॥१॥

यज्ञोपवीत होनेके उपरान्त बालक गुरुकुल में निवास करे, और कर्म, मन, वाणी से गुरु के कुल में प्रीति रखे ॥१॥

ब्रह्मचर्यमधः शय्या तथा वहरुपासना ॥
उदकुंभान्गुरोर्दद्या गोग्रासं चेंधनानि च ॥२॥

गुरुके घरमें वास करनेके समय, ब्रह्मचर्य, पृथ्वी पर शयन, अग्निहोत्र करता रहे और गुरु के लिये जल का घडा, और ईंधन लकडी और गायों के निमित्त घास ला कर दे ॥२॥

कुर्यादध्ययनं चैव ब्रह्मचारी यथाविधि ॥
विधि त्यक्त्वा प्रकुर्वाणो न स्वाध्यायफलं लभेत् ॥३॥

ब्रह्मचारी विधिपूर्वक वेद को पढे, जो बिना विधि से अध्ययन करता है उसे अध्ययन का फल प्राप्त नहीं होता।॥३॥

यः कश्चित्कुरुते धर्म विधि हित्वा दुरात्मवान् ॥
न तत्फलमवामोति कुर्वाणोपि विधिच्युतः ॥४॥

जो कोई दुरात्मा विधि को छोड कर धर्म का आचरण करता है, वह विधिभ्रष्ट पुरुष धर्म का आचरण करके भी उसके फल को प्राप्त होता नहीं ॥४॥

तस्मादेदव्रतानीह चरेत्स्वाध्यायसिद्धये ॥
शौचाचारमशेषं तु शिक्षयेद्गुरु सन्निधौ ॥ ५॥

इस कारण स्वाध्याय की सिद्धि के निमित्त गुरुकुल में वेद के व्रतोंको करै, और गुरु के समीप से सम्पूर्ण शौचादि के आचरण सीखे ॥५॥

अजिने दंडकाष्ठं च मेखलाञ्चोपवीतकम् ॥
धारयेदप्रमत्तश्च ब्रह्मचारी समा हितः ॥ ६ ॥

मृगछाला, दंड, मेखला, यज्ञोपवीत, इनको सावधान और अप्रमत्त होकर धारण करे ॥६॥

सायंप्रातश्चरेद्रेक्षं भोज्याथ संयतेन्द्रियः ॥
आचम्य प्रयतो नित्यं न कुर्यादंतधावनम् ॥ ७ ॥

जितेन्द्रिय होकर भोजनकी प्राप्तिके निमित्त प्रातःकाल और संध्याके. समय मिक्षाके निमित्त भ्रमण करे और नित्य सावधानी से आचमन करने पीछे दन्तधावन करे ॥ ७॥

छत्रं चोपानरं चैव गंधमाल्यादि वर्जयेत् ॥
नृत्यं गीतमथालापं मैथुनं च विवर्जयेत् ॥ ८ ॥

छत्री, जूता, गंध, माला, नृत्य, गाना, निरर्थक बोलना और मैथुन इनको त्याग दे॥८॥

हस्यश्वारोहणं चैव संत्यजेत्संयते न्द्रियः ॥
संध्योपास्ति प्रकुर्वीत ब्रह्मचारी व्रतस्थितः ॥ ९॥

जितेन्द्रिय हो ब्रह्मचारी हाथी और घोडे पर न चढ़ें, और व्रत में स्थित रहकर ब्रह्मचारी संध्योपासना करे ॥९॥

अभिवाद्य गुरोः पादौ संध्याकावसानतः ॥
तथा योगं प्रकुर्वीत मातापित्रोश्च भक्तितः ॥१०॥

संध्या करने के उपरान्त गुरुके दोनों चरणों में नमस्कार कर इसके पश्च्यात भक्तिसहित पिता और माता की सेवा करे ॥१०॥

एतेषु त्रिषु नष्टेषु नष्टाः स्युः सर्वदेवताः ॥
एतेषां शासने तिष्ठेब्रह्मचारी विमत्सरः ॥११॥

जो ब्रह्मचारी तीन कर्मों से अर्थात् गुरु, माता, पिता, इनकी सेवा से नष्ट हो जाए तो उस पर समस्त देवता अप्रसन्न होते हैं इससे ईर्षा रहित होकर ब्रह्मचारी इनकी शिक्षा में स्थित रहे ॥११॥

अधीत्य च गुरोर्वेदान्वेदौ वा वेदमेव वा ॥
गुरवे दक्षिणां दद्यात्संयमी ग्राममावसेत् ॥१२॥

गरसे सम्पूर्ण चारों वेद अथवा दो वेद या एक वेदको पढकर उन्हे दक्षिणा दे जितेन्द्रिय ब्रह्मचारी प्राममें निवास करै ॥ १२ ॥

यस्यैतानि सुगुप्तानि जिह्वोपस्थोदरं करः ॥
संन्याससमयं कृत्वा ब्राह्मणो ब्रह्म चर्यया ॥१३॥

जिसकी जिह्वा, लिंग, इन्द्रिय, उदर और हाथ भलीभांति से वशमें है, वह ब्राह्मण संन्यास की प्रतिज्ञा को करके ब्रह्मचारी के आचरण से ॥१३॥

तस्मिन्नेव नयेत्कालमाचार्ये यावदायुषम् ॥
तदभावे च तत्पुत्रे तच्छिष्ये वायवा कुले ॥ १४ ॥

उस आचार्य गुरु के यहां ही जितनी अवस्था है उतने समय को व्यतीत करे, यदि आचार्य न हो तो उसके पुत्र के समीप, और पुत्र के न होने पर उसके शिष्य के निकट; और शिष्य भी न हो तो गुरु के कुल में रहकर जन्म बिताए ॥१४॥

न विवाहो न संन्यासो नैष्ठिकस्य विधीयते ॥
इमं यो विधिमास्थाय त्यजेदेह मतंद्रितः ॥१५॥

इस नैष्टिक ब्रह्मचारीको विवाह और संन्यास नहीं कहा; जो आलस्यरहित होकर उस विधि से शरीर छोडता है ॥१५॥

नेह भूयोऽपि जायेत ब्रह्मचारी दृढव्रतः ॥ १६ ॥

उस ब्रह्मचारीका पृथ्वीपर फिर जन्म नहीं होता अर्थात् उसको मोक्ष प्राप्त होता है ॥१६॥

यो ब्रह्मचारी विधिना समाहितश्चरेत्पृथिव्यां गुरुसेवने रतः ॥
संप्राप्य विद्यामतिदुर्लभांशिवां फलश्च तस्याः सुलभंतु विंदति ॥१७॥

जो ब्रह्मचारी सावधान होकर विधिपूर्वक गुरु की सेवा करता हुआ पृथ्वी में भ्रमण करता है यह अत्यन्त दुर्लभ और कल्याण रूप विद्या को प्राप्त होकर उस विद्या के सुलभ फल को प्राप्त होता है ॥१७॥

इति हारीते धर्मशास्त्रे तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

हारीत स्मृतिः का तीसरा अध्याय समाप्त हुआ ॥३॥

चतुर्थोऽध्यायः चतुर्थअध्याय

गृहीतवेदाध्ययनः श्रुतशास्त्रार्थतत्त्ववित् ॥
असमानपिंगोत्रां हि कन्यां सभ्रा. तुका शुभाम् ॥१॥

सर्वावयरसंपूर्णा सुवृत्तामुव्हेन्नरः ॥
ब्राह्मण विधिना कुर्यात्प्रशस्तेन द्विजोत्तमः ॥२॥

वेद को ब्रह्मचर्य से पढा हुआ और गुरु के मुख से पढा हुआ शास्त्र के तात्पर्य का ज्ञाता, ब्राह्मण अपना विवाह करनेवाला पुरुष का गोत्र और प्रवर के तुल्य गोत्र और प्रवर जिसके नहीं है ऐसी और जिसके भाई हो ऐसी अच्छी सुन्दर आचरणवाली, और दे हके सम्पूर्ण अंगों से युक्त ऐसी कन्या से विवाह करे और आठ विवाहों के मध्य में जो उत्तम ब्राह्म विवाह है, उससे विवाह करे ॥१-२॥

तथान्ये बहवः प्रोक्ता विवाहा वर्णधर्मतः ॥
औपासनं च विधिवदाहत्य द्विनपुंगवाः ॥ ३॥

इसी प्रकार से अन्य वर्गों के भी विवाह धर्मानुसार बहुत कहे हैं। ब्राह्मण विधिपूर्वक उपासना अग्नि को ग्रहण करके ॥३॥

सायं प्रातश्च जुहुयात्सर्वकालमतंद्रितः ॥
लानं कार्य ततो नित्यं दन्तधावनपूर्वकम् ॥४॥

आलस्यरहित होकर सायंकाल और प्रातःकाल में प्रतिदिन हवन करे। और नित्य दन्त धावन करके स्नान करे ॥४॥

उषाकाले समुत्थाय कृतशौचो यथाविधि ॥
मुखे पर्युषिते नित्यं भवत्यप्रयतो नरः॥ ५ ॥

उषा काल में उठकर यथाविधि शौचादि को करे, क्योंकि मुख के पर्युपित रहने से मनुष्य नित्य अपवित्र रहता है ॥५॥

तस्माच्छुकमयदि वा भक्षयेद्दन्तकाष्ठकम्॥
करंजं सादिरं वापि कदंब कुरवंतया ॥६॥

इसकारण सूखी अथवा गीली दंतकाष्ठ का भेक्षण दंतौन करे और वह काठ कंरज वा, खैर, कदंब, मौलासरी का होना श्रेष्ठ है ॥६॥

सप्तपर्ण पृश्निपणी जंबू निवं तथैव च ॥
अपामार्ग विल्वं चाक चोदुंबरमेव च ॥७॥

सप्तपर्ण, पृष्णिपणी जामन, नीम, ओंगा, बेल, आक, गूलर, ॥७॥

एते प्रशस्ताः कथिता देतधावनकर्मणि ॥
दंतकाष्टस्य भक्ष्यस्य समासेन प्रकीर्तितः॥८॥

इतने वृक्ष दतौनके लिये उत्तम कहे हैं, और दतौन के काठ का भक्षण इस भांति संक्षेप से कहा है ॥८॥

सर्वे कंटकिनः पुण्याः क्षीरिणच यशस्विनः ॥
अष्टांगुलेन मानेन दंतकाष्टमिहोच्यते ॥
प्रादेशमात्रमयवा तेन दन्ता विशोधयेत् ॥ ९॥

कांटे वाले वृक्ष और दूधवाले वृक्षों की लकडीकी दातौन करने से पुण्य और यश की वृद्धि होती है, आठ अंगुल, या दश अंगुल की लम्बी लकडी दतौंन के लिये कही है, अथवा प्रादेशमात्र लम्बी अर्थात अंगूठे से तर्जनी तक दतौंन की लकडी का प्रमाण है इससे दांतों की शुद्धि करे ॥९॥

प्रतिपपर्वपष्टीपु नवम्यां चैव सत्तमाः ॥
दतानां काष्ठसं योगाइहत्यासप्तम:कुलम् ॥१०॥

हे सन्तों में उत्तमों ! पडवा, अमावस्या, छठ और नवमी तिथिमें जो दतौन करता है उसके सात कुल दग्ध हो जाते हैं ॥१०॥

अभावे दन्तकाष्ठानां प्रतिपिछदिनेषु च ॥
अपां बादशगंडूपैर्मुखशुद्धिं समाचरेत् ॥११॥

इन दिनों दातौंन न करके दातौन के अभाव में केवल जल से बारह कुल्ले करके मुख शुद्ध करे ॥११॥

नात्वा मंत्रवदाचम्य पुनराचमनं चरेत् ॥
मंत्रवत्मोक्ष्य चात्मानं प्रक्षिपदुदकांज लिम् ॥१२॥

पहले मंत्रों से आचमन करके उसके पश्च्यात स्नान कर आचमन करे, और मंत्रों से आत्मा को शुद्ध करके जल की अंजुली सूर्य भगवान को दे ॥१२॥

आदित्येन सह मातर्मन्देहा नाम राक्षसाः ॥
युद्धयन्ति वरदा नेन ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ॥१३॥

क्योंकि अव्यक्त अजन्मा भगवान् ब्रह्मा जी के वरदान से दर्पित हो मंदेह नाम के राक्षसगण प्रातः काल के सूर्य के साथ युद्ध करते हैं ॥१३॥

उदकांजलिनिःक्षेपागायच्या चाभिमंत्रिताः ॥
निननि राक्षसान्सन्मिन्देहाख्यान्दिजेरिताः ॥१४॥

उस समय गायत्री मंत्रों से अभिमंत्रित हुई ब्राह्मणों की दी हुई जलांजलि उन मंदेह नामक सम्पूर्ण राक्षसोंको नष्ट करती है ॥१४॥

ततः प्रयाति सविता बाह्मणैरभिरक्षितः ॥
मरीच्या_महाभागैः सनकाद्यैश्च योगिभिः ॥१५॥

उस जलांजलि से ब्राह्मणों के द्वारा तथा मरिषि आदि महाभागों और सनकादिक योगियों से सुरक्षित होकर सूर्यभगवान् आकाश में गमनकरते हैं ॥१५॥

त स्मान लंघयेत्संध्यां सायं प्रातः समाहितः ॥
उल्लंघयति यो मोहात्स याति न रकं ध्रुवम् ॥ १६॥

इस कारण द्विजातिगण सावधान होकर प्रातःकाल और साचंकाल की संध्या का उल्लंघन न करें जो मनुष्य मोइ के वश से संध्या का उल्लंघन करते हैं वह निश्चय ही नरक में जाते हैं ॥१६॥

सायं मंत्रवदाचम्य प्रोक्ष्य सुर्य्यस्य चाञ्जलिम् ॥
दत्त्वा प्रदक्षिणं कुर्य्याजलं स्पृष्ट्या विशुद्धयति ॥१७॥

सायंकाल में आचमन करने के पश्च्यात पीछे मंत्रों से अभिमंत्रित हुए जल को शरीर पर छिड़क कर सूर्य भगवान को जलांजलि देकर चारधार उनकी प्रदक्षिणा करके, इसके पीछे जल को स्पर्श करके शुद्धि प्राप्त करे ॥१७॥

पूर्वी संध्यां सनक्षत्रामुपासीत यथाविधि ॥
गायत्रीमभ्यसेत्तावंद्यावदादित्य दर्शनात् ॥१८॥

भलीभांति से नक्षत्र दीखते हों उस समय प्रातःकाल की संध्या करे और जब तक सूर्यभगवान का दर्शन भलीभांति से न हो जाए तब तक गायत्री का जप करता है ॥१८॥

उपास्य पश्चिमा सन्ध्या सादित्यां च यथाविधि ॥
गायत्रीमभ्यसत्तावद्यावत्तारणि पश्यति ॥१९॥

और सूर्य के अस्त होने के पूर्व अर्थात् अर्धास्तमित समय में विधि से संध्या प्रारंभ करके जब तक कुछ कुछ तारों का दर्शन नहीं हो जाए तब तक गायत्री का जप करता रहै ॥१९॥

ततश्चाक्सथं प्राप्य कृत्वा होमं स्वयं वृधः ।
संचिंत्य पोष्यवर्गस्य भरणार्थ विचक्षणः ॥२०॥

इसप्रकार सन्ध्यावन्दन करनेके उपरान्त बुद्धिमान ब्राह्मण घर में जाकर शास्त्र को विधि के अनुसार स्वयं हवन करे, इसके पश्च्यात पोष्यवर्ग पुत्र भृत्य आदि के भरण के निमित चिन्ता करे ॥२०॥

ततः शिष्यहितार्थाय स्वाध्यायं किंचिदाचरेत् ॥
ईश्वरं चैव कार्यार्थमभिगच्छेहिजोत्तमः ॥२१॥

इसके उपरान्त निश्चिन्त होकर ज्ञानी ब्राह्मण अपने शिष्य के कल्याण के लिये कुछ एक स्वाध्याय कर, और हे द्विजोत्तमों ! इसके पश्च्यात कार्य के लिये राजा के यहां जाए ॥२१ ॥

कुशपुष्पंधनादीनि गत्वा दूरं समाहरेत् ॥
ततो मध्यादिकं कुर्याच्छचों देश मनोरमे ॥२२॥

दूरदेश में से जाकर कुशा, फूल, ईधन-लकडी आदि को लेकर आए, इसके पीछे मनोरम शुद्ध देश में जाकर मध्याहिक कर्म को करें ॥२२॥

विधि तस्य प्रवक्ष्यामि समासात्पापनाशनम् ॥
स्नात्वा येन विधानेन मुच्यते सर्वकिल्विषात् ॥२३॥

संक्षेप से पापनाशक उसकी विधि कहता हूँ, उस विधि के अनुसार स्नान करने से सब पापों से टूट जाता ॥२३॥

स्नानार्य मृदमानीय शुद्धाक्षततिलैः सह ॥
सुमनाश्च ततो गच्छेन्नदी शुद्धजला धिकाम् ॥२४॥

शुद्ध अक्षत और तिलों के साथ स्नान के लिये मिट्टी को लाकर उदार मन होकर शुद्ध और अधिक जलवाली नदी पर जाकर स्नान करना चाहिए ॥२४॥

नद्यां तु विद्यमानायां न मायादन्यवारिणि ॥
न वायादल्प तोयेषु विद्यमाने बहूदके ॥२५॥

नदी के होते हुए अन्य जल में स्नान नहीं करे, और अधिक जलवाले तीर्थ के होते हुए अल्पजल वाले कूपादि में स्नान नहीं करनी चाहिए ॥२५॥

सरिद्वरं नदीनान प्रतिस्त्रातास्थितश्चरेत् ॥
तडागादिषु तोयपु स्नायाच्च तदभावतः ॥ २६ ॥

नदियों में श्रेष्ठ गंगादि समुद्रवाहिनी में प्रवाह के सन्मुख स्थित होकर स्नान करना चाहिए, नदी के न होनेपर तालाब आदि के जल में स्नान करना चाहिए ॥२६॥

शुचिदेशे समभ्युक्ष्य स्थापयेत्सकलांवरम् ॥
मृत्तोयेने स्वकं देहं लिपेत्मक्षाल्य यत्नतः ॥२७॥

प्रथम शुद्धदेश में जल को छिडककर सम्पूर्ण वस्त्रों को रखदे, इसके पश्च्यात यत्नपूर्वक मिटटी और जल से अपनी देह को लीपकर प्रक्षालन करे ॥२७॥

स्नानादिकं च समाप्य कुर्यादाचमनं बुधः॥
सोऽन्तर्जलं प्रवि श्याथ वांग्यतो नियमेन हि ॥२८॥

हरि संस्मृत्य मनसा मज्जयेच्चोरुमजले ॥
ततस्तीरं समासाद्य आचम्यापः समंत्रतः ॥ २९ ॥

स्नानादि को करके बुद्धिमान् मनुष्य आचमन करे फिर वह पुरुष जल के भीतर प्रवेश करके मौन होकर नियम सहित हरि का स्मरण करके जंघा तक जल में गोता लगाए इसके पश्च्यात किनारे पर आकर मंत्रोंसहित जलसे आचमन करके ॥२८-२९॥

प्रोक्षयेदारुणमैत्रः पावमा नीभिरेव च ॥
कुशाग्रकृततोयेन प्रोत्यात्मानं प्रयत्नतः ॥३०॥

वरुण देवता के मन्त्र अथवा पावमानी सुक्त से शरीर का प्रोक्षण करै; कुशा के अग्र के जल से यत्न सहित देह का प्रोक्षण करके ॥३०॥

स्योनापृथ्वी ति मृगा। इदविष्णुरिति द्विजाः ॥
ततो नारायगं देवं संस्मरेत्प्रतिमननम् ॥३१॥

स्योनापृथ्वी इत्यादि मंत्रोंसे अथवा इदंविष्णु इत्यादि मंत्रों को पढकर देह में मट्टी लगाए; इसके पीछे प्रत्येक गोते में नारायण का स्मरण करे ॥३१॥

निमज्ज्यांतर्जले सम्यक्रियते चाघमर्षणम् ॥
स्नात्वाक्षततिलैस्तदेवपिपितृभिः सह ॥ ३२ ॥

इसके पीछे जलके बीच में निमग्न हुए अघमर्षण मंत्र (ऋतंचसत्यमित्यादि) का जप करना चाहिए। इसके पीछे स्नान करके अक्षत और तिल से देव, ऋषि और पितरों का ॥३२॥

तर्पयित्वा जलं तस्मानिष्पी ड्य च समाहितः ॥
जलतीरं समासाद्य तत्र शुक्ले च वाससी ॥ ३३ ॥

तर्पण करके किनारे पर आकर वन को निचोड कर सावधानी से सफेद वस्त्रों को ॥३३ ॥

परि धायोत्तरीयं च कुर्यात्केशान्न धूनयेत् ॥
न रक्तमुल्वणं वासो न नीलं च प्रशस्यते ॥३४॥

पहनकर दुपट्टा पहने और बालों को झाडे नहीं; अर्थात् शिखा को नहीं फटकारे क्योंकि उसके जल का अंग पर गिरना अच्छा नहीं है अत्यन्तलाल और नीलावस्त्र श्रेष्ठ नहीं है ॥३४॥

मलाक्तं गंधहीनं च वर्जयेदंबरं बुधः ॥
ततः प्रक्षालयेत्पादौ मृत्तोयेन विचक्षणः ॥३५॥

मैले कुचले और गन्धहीन वस्त्र को त्याग दे, इसके पीछे बुद्धिमान् मनुष्य मट्टी के जल से पैरों को धोए ॥३५॥

दक्षिणं तु करं कृत्वा गोकर्णाकृतिवत्पुनः ॥

त्रिपिवेदीक्षितं तोयमास्यं दिः परिमार्जयेत् ॥३६॥

इसके पीछे दहिने हाथ का गौ के कान के समान आकार बनाए और तीन बार जल पिये फिर दोबारा अंगूठे से मुखमार्जन करे अर्थात् दोनों होठों को पोंछे॥३६॥

पादौ शिरस्ततोऽभ्युक्ष्य त्रिभिरास्यमुपस्पृशेत्॥
अंगुष्ठा नामिकाभ्यां च चक्षुपी समुपस्पृशेत् ॥ ३७ ॥

फिर पैर और शिर पर जलछिडक कर बीच की तीन अंगुलियों से मुख का स्पर्श करें, अंगूठे और अनामिका से दोनों नेत्रों को स्पर्श करे ॥३७॥

तथैव पंचभिर्मुनि स्पृशेदेवं स माहितः ॥
अनेन विधिनाचम्य ब्राह्मणः शुद्धमानसः ॥३८॥

इस प्रकार विधि सहित बुद्धिमान् मनुष्य सावधान होकर पांचों उंगलियों से मस्तक का स्पर्श करें, शुद्ध मनवाला ब्राह्मण इस विधि से आचमन करके ॥३८॥

कुर्वीत दर्भ पाणिस्तूदङ्मुख प्रामुखोऽपि वा ।
नाणायामत्रय धीमान्यथान्यायमत द्वितः ॥३९॥

कुशा हाथ में लेकर पूर्व मुंह होकर आलस को छोडकर न्याससहित तीन प्राणायाम करे ॥३९॥

जपयज्ञ ततः कुर्याद्वायत्री वेदमातरम् ॥
त्रिविधो जपयज्ञः स्यात्तस्य तत्व नि:बोधत ॥४०॥

इसके पीछे वेदों की माता गायत्री को जप और जपयज्ञ करे यह जपयज्ञ तीन प्रकार का है, आपसे उसका स्वरूप कहता हूँ ॥४०॥

वाचिकच उपांशुश्च मानसश्च विधाकृतिः ॥
त्रयाणामपि यज्ञानां श्रेष्ठः स्यादुत्तरोत्तरः ॥४१॥

वाचिक, उपांशु धीमी वाणी से और मानसिक, यह तीन प्रकार के जप के भेद। इन तीनों जपयज्ञो के बीच में उत्तरोतर श्रेष्ठ है ॥४१॥

यदुच्चनीचोच्चरितैः शब्दैः स्पष्टपदाक्षरः ॥
मंत्रमुच्चारयन्वाचा जपयज्ञस्तु वाचिकः ॥४२॥

जिसका ऊँचा और नीचा उच्चारण स्पष्ट पदाक्षरों के शब्दों से मन्त्रपाठ किया जाता है उसी जप को वाचिक कहते हैं ॥४२॥

शनैरुचारयन्मत्रं किंचिदोष्ठी: प्रचालयेत् ॥
किंचिच्छवणयोग्यः स्यात्स :पांशुर्जपः स्मृतः ॥४३॥

और जिसमें कुछ कुछ होठ कंपित हो और धीरे धीरे मन्त्र का उचारण हो, कुछ कुछ शब्द सुनाई आता हो , उसे उपांशु जप कहते हैं ॥४३॥

धिया पदाक्षरश्रेण्या अवर्णमपदाक्षरम् ॥
शब्दाचिंतनाभ्यां तु तदुक्तं मानसं स्मृतम् ॥४४॥

बुद्धि से ही पद और अक्षर की पंक्ति का स्मरण हो वर्ण और पदाक्षर सुनाई न आए; केवल शब्द और अर्थ का विचार ही जिसमें हो, उसका नाम मानसिक जपयज्ञ है ॥४४॥

जपेन देवता नित्यं स्तूयमाना प्रसीदति ॥
प्रसन्ने विपुलान्गोत्रान्प्रामुवति मनीषिणः ॥४५॥

जप से स्तुति किए जाकर देवता प्रसन्न होते हैं, देवताओं के प्रसन्न होने पर मनुष्यों को बहुत सी वंश की वृद्धि प्राप्त होती है ॥४५॥

राक्षसाश्च पिशाचाच महासाश्च भीषणाः ॥
जपितान्नोपसर्पत दूरादेव प्रयांति ते ॥४६॥

जपकरने से भयंकर राक्षसगण, पिशाच और सर्प यह निकट नहीं आ सकते अपितु वह दूर से ही भाग जाते हैं ॥४६॥

छंदऋष्यादि विज्ञाय जपेन्मंत्रमतंदितः॥

जपेदहरहर्ज्ञात्वा गायत्री मनसा द्विजः ॥४७॥

छंद और ऋषि को जान कर आलस्यरहित होकर मन्त्र जपे, प्रतिदिन मन से छन्द आदि को जानकर ब्राह्मण गायत्री को जप ॥४७॥

सहस्रपरमां देवीं शतमध्यां दशावराम् ॥
गायत्री यो जपेन्नित्यं स न पापेन लिप्यते ॥१८॥

सहस्र गायत्री का जप श्रेष्ठ है, और शत (१००) गायत्री का जप मध्यम, और दश का जप निकृष्ट (अधम) है, जो प्रतिदिन गायत्री का जप करता है वह पाप से लिप्त नहीं होता ॥४८॥

अथ पुष्पांजलिं कृत्वा भानवे चोर्ध्ववाहुकः ॥
उदुत्यं च जपेत्सूक्तं तच्चक्षुरिति चापरम् ॥ ४९ ॥

इसके उपरान्त श्री सूर्यनारायण को पुष्पसहित जल की अंजुली देकर उर्धबाहु होकर अर्थात ऊपर को दोनों हाथ उठा कर "उदुत्यं जातवेदसम्, और "तचक्षुर्देवहितम्" इन सूक्तों सूर्य की स्तुतिक मंत्रों का जप करना चाहिए ॥४९॥

प्रदक्षिणमुपावृत्य नमस्कादिवाकरम् ॥
तत्तत्तीर्थन देवादीनद्भिः संतपयेदिजः॥५०॥

इसके पश्च्यात सात बार अथवा तीन बार प्रदक्षिणा करके सूर्य को नमस्कार करे। फिर द्विज, जल से देव आदिक तीर्थ से सूर्य देवता इत्यादि का तर्पण करै ॥५०॥

स्नानवस्त्रं तु निष्पीय पुनरा चमनं चरेत् ॥
तद्भक्तजनस्येह स्नानं दानं प्रकीर्तितम् ॥५१॥

फिर स्नान के वस्त्रको निचोडकर पुनर्वार आचमन करे, क्योंकि इसी स्थान पर भक्तों का स्नान और दान कहा है ॥५१॥

दर्भासीनो दर्भपाणिब्रह्मयज्ञविधानतः॥
प्राङ्मुखो ब्रह्मयज्ञं तु कुर्याच्छ्रद्धासमन्वितः ॥५२॥

श्रद्धायुक्त होकर कुशा के आसन पर बैठकर कुशा हाथ में लेकर पूर्वमुख होकर ब्रह्मयज्ञ को विधि के अनुसार ब्रह्मयज्ञ करे ॥५२॥

ततोऽर्घ्यं भानवे दद्यात्तिलपुष्पाक्षतान्वितम् ॥
उत्थाय मुद्धपर्यंत हंसशुचि पदित्यूचा ॥५३॥

इसके उपरान्त उठकर फिर तिल पुष्प और अक्षतों से अर्थ को मस्तक पर्यन्त उठाकर हंस शुचिपत् इत्यादि ऋचा से अभिमंत्रित करके सूर्य को दे ॥५३॥

ततो देवं नमस्कृत्य गृहं गच्छेत्ततः पुनः॥

विधिना पुरुषसूक्तस्य गत्वा विष्णुं समर्चयेत् ॥५४॥

फिर सूर्यभगवान को नमस्कार करके घर को जाए, वहां विधि से पुरुषसूक्त (सहस्त्र शीर्षा इत्यादि १६ मंत्र) से विष्णु का पूजन करे ॥५४॥

वैश्वदेवं ततः कुर्यादलिकर्म विधानतः ॥
गोदोहमात्रमाकांक्षेदतिथि प्रति वै गृही ॥५५॥

इसके उपरान्त वैश्वदेव की विधि के अनुसार वैश्वदेव को बलि देनी चाहिए, जितने समय में गौ दुहन हो सकता है उतने समय तक गृहस्थी अतिथि की राह देखता रहे ॥५५॥

अष्टपूर्वमज्ञातमतिथिं प्राप्तमर्चयेत् ॥
स्वागतासनदानेन प्रत्युत्थानेन चांबुना ॥५६॥

जिसको पहले कभी न देखा हो ऐसे आये अतिथि की भी स्वागतवचन अर्थात आप अच्छे हैं, बड़ी कृपा की जो दर्शन दिए इत्यादि कहना आसन देना, देखकर उठना, जल आदि से अतिथि की पूजा सत्कार करे ॥५६॥

स्वागतेनामयस्तुष्टा भवति गृहमेधिनः ॥
आसनेन तु दत्तेन मौतो भवति देवराट् ॥५७॥

स्वागत पूछने से गृहस्थी की अग्नि संतुष्ट होती है, आसन प्रदान करने से इन्द्र प्रसन्न होते हैं ॥५७॥

पादशौचेन पितरः प्रीतिमायाँति दुर्लभाम् ॥
अन्न दानेन युक्तेन तृप्यते हि प्रजापतिः ॥५८॥

चरणोंके धोनेसे पितृगण दुर्लभ प्रीतिको प्राप्त होते हैं, उत्तम अन्न के देने से प्रजापति ब्रह्माजी प्रसन्न होते हैं ॥५८॥

तस्मादतिथये कार्य पूजनं गृहमेधिना ॥
भक्त्या च शक्तितो नित्यं पूजयेद्विष्णुमन्वहम् ॥५९॥

इस कारण गृहस्थियों को अतिथि का पूजन करना अवश्य कर्तव्य है, तथा गृहस्थी भक्ति और शक्तिसे सर्वदा विष्णुका पूजन करे ॥५९॥

भिक्षां च भिक्षवे दयात्परिवाड् ब्रह्मचारिणे ॥
अकल्पितान्नादुद्धृत्य सव्यंजनसमन्विताम् ॥६०॥

अनंतर अन्न के विभाग से पूर्व ही व्यंजन सहित भिक्षा दे ॥६०॥

अकृते वैश्वदेवेऽपि भिक्षौ च गृहमागते॥
उद्धृत्य वैश्वदेवार्थ भिक्षां दत्वा विस जयेत् ॥६१॥

संन्यासी और ब्रह्मचारी भिक्षुक को बलिवैश्व देव के लिये अन्न को निकालकर भिक्षा देकर विदा करें ॥६१॥

वैश्वदेवात्कृतान्दोषाञ्छतो भिक्षुळपोहितुम् ॥
न हि भिक्षु कृतान्दोषान्वैश्वदेवो व्यपोहति ॥६२॥

कारण कि, वैश्वदेव के न करने से जो पाप होता है उसके दूर करने को भिक्षुक समर्थ है और जो पाप भिक्षुक के निरादर करने से होताहै, उस पाप को वैश्वदेव दूर नहीं कर सकता ॥६२॥

तस्मात्प्राप्ताय यतये भिक्षा दद्यात्स माहितः ॥
विष्णुरेव यतिचायमिति निश्चित्य भावयेत् ॥६३॥

इस कारण जो अतिथि आए उसे सावधान होकर भिक्षा दे और निःसन्देह संन्यासी को विष्णु का रूप समझे ॥६३ ॥

सुवासिनी कुमारी च भोजयित्वा नरानपि ॥
वालवृद्धांस्ततः शेषं स्वयं भुंजीत वा गृही ॥ ६४ ॥

गृहस्थी मनुष्य प्रथम, सुहागिनी, और कुमारी, वालक और वृद्ध इन मनुष्यों को भोजन्न कराकर पीछे शेष बचे अन्न का भोजन अपने आप करने चाहिए ॥६४॥

प्राङ्मुखोदइन्मुखो वापि भौनी च मितभाषणः ॥

अन्नमादौ नमस्कृत्य प्रह ष्टनांतरात्मना ॥६५॥

भोजन को इस प्रकार से करना चाहिए कि पूर्वमुख अथवा उत्तरमुख होकर बैठे और मौन धारण करके अथवा परिमित बोलकर प्रसन्नचित्त होकर प्रथम अन्नदेव को नमस्कार करे ॥६५॥

पञ्च प्राणाहुतीः कुन्मित्रेण च पृथक्पृथक्।
तत स्वादुकरान्नं च भुंजीत सुसमाहितः ॥६६॥

पीछे पृथक् पृथक् मन्त्रों से प्राणाहुति - प्राणाय स्वाहा इत्यादि को करे और इसके पश्च्यात स्वादिष्ट अन्न को भलीभांति से सावधान होकर भोजन करना चाहिए ॥६६॥

आचम्य देवतामिष्टां संस्मरन्नुदरं स्पृशेत् ॥
इतिहासपुराणाभ्यां कंचित्कालं नयेद्बुधः ॥६७॥

भोजन के उपरान्त आचमन करके इष्टदेवता का स्मरण करता हुआ उदर का स्पर्श करे, इसके उपरान्त विद्वान् मनुष्य कुछ समय तक इतिहास और पुराणों के सुनने में बिताए ॥६७॥

ततः संध्यामुपासीत बहिर्गत्वा विधानतः ॥
कृतहोमस्तु मुंजीत रात्रौ चातिथिभोजनम् ॥ ६८॥

फिर विधिविधानसहित ग्राम से बाहर जाकर सन्ध्यावंदन करै फिर हवन करके और अभ्यागत को भोजन कराकर अपने आप रात्रि को भोजन करे ॥६८॥

सायं प्रातदिनातीनामशनं श्रुतिचोदितम् ॥
नांतरा भोजनं कुर्यादग्निहोत्रसमो विधिः ॥६९॥

सायंकाल और प्रातःकाल में भोजन करने की आज्ञा ब्राह्मणों को वेद ने ही दी है, इस बीच दिन में दुबारा भोजन नहीं करना चाहिए, क्योंकि यह भोजन की विधि अग्निहोत्र के तुल्य है। ॥६९॥

शिष्यानध्यापयेच्चापि अनध्याये विसर्जयेत् ॥
स्मृत्युक्तानखिलांश्चापि पुराणो तानपि द्विजः॥७०॥

शिष्यों को पढाए परन्तु अनध्याय के दिन नहीं पढाना चाहिए, ब्राह्मण जो यह सम्पूर्ण अनध्याय अष्टमी चतुर्दशी आदिक धर्मशास्त्र और पुराणों में कहे गए हैं उनको पढाना वर्जित कर दे ॥७०॥

महानवम्यां द्वादश्यां भरण्यामपि पर्वसु॥
तथाक्षयतृतीया यां शिष्यानाध्यापयविनः ॥७१॥

तथा महानवमी, द्वादशी, भरणी नक्षत्र, पर्व, अक्षयतृतीया, इनमें भी शिष्यों को नहीं पढ़ाना चाहिए ॥७१॥

माघमासे तु सप्तम्यां रथाख्यायां तु वर्ज येत् ॥
अध्यापनं समभ्यस्यन्नानकाले च वर्जयेत् ॥ ७२ ॥

माघमहीने की रथसप्तमी को भी पढाना उचित नहीं है तथा स्नान के समय भी पढाने को वर्जित कर दे ॥७२॥

नीयमानं शवं दृष्ट्वा महीस्थं वा द्विजोत्तमाः ॥
न पठेद्बुदितं श्रुत्वा संध्यायां तु दिजोत्तमाः॥ ७३ ॥

हे द्विजोत्तमो ! मुरदे को ले जाते समय अथवा पृथ्वीपर पडे हुए देखकर अथवा रोने के शब्द को सुनकर, और सन्ध्या के समय में भी नहीं पढ़ाना चाहिए ॥७३॥

दानानि च प्रदेयानि गृहस्थेन द्विजोत्तमाः ॥
हिरण्यदानं गोदानं पृथिवीदानमेव च ॥७४॥

हे ब्राह्मणों ! यह दान भी गृहस्थियों को देने योग्य है, सुवर्णदान, गौदान और पृथ्वीदान ॥७४॥

एवं धर्मो गृहस्थस्य सारभूत उदाहतः ॥
य एवं श्रद्धया कुर्यात्स याति ब्रह्म णः पदम् ॥७५॥

इस प्रकार गृहस्थी के सारभूत धर्म को मैंने तुमसे कहा; जो श्रद्धासहित इस धर्माचरण को करताहै, वह ब्रह्मपद को प्राप्तहोता है ॥७५॥

ज्ञानोत्कर्षश्च तस्य स्यानरसिंहप्रसादतः ॥
तस्मान्मुक्तिः मवाप्नोति ब्राह्मणो द्विजसत्तमाः ॥ ७६ ॥

और नरसिंह भगवान की कृपा से उसे अधिक ज्ञान की प्राप्ति होती है; हे द्विजोत्तमों ! उस ज्ञानसे ब्राह्मण मुक्ति को प्राप्त होते हैं ॥७६॥

एवं हि विप्राः कथितो मया वः समासतः शाश्वतधर्मराशिः॥
गृही गृहस्थस्य सतो हि धर्म कुर्वन्प्रयत्नाद्धरिमेति युक्तम् ॥ ७७ ॥

हे विप्रगण ! संक्षेप से मैनें तुमसे सनातनधर्म का समूह कहा; गृहस्थी यत्न साहित गृहस्थ के पालने योग्य इस धर्म के करने से सर्वोचम विष्णु भगवानको प्राप्त होता है; अर्थात् उसकी मुक्ति हो जाती ॥७७॥

इति हारीते धर्मशास्त्रे चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

हारीत स्मृतिः का चौथा अध्याय समाप्त हुआ ॥४॥

पञ्चमोऽध्यायः पांचवां अध्याय

अतः परं प्रवक्ष्यामि वानप्रस्थस्य सत्तमाः ॥
धर्माश्रमं महाभागाः कथ्यमानं निबोधत ॥ १॥

हे महामाग सत्तमाण ! अब मैं वानप्रस्थधर्म को कहताहूं, तुम सावधान होकर मेरे कहे हुए उस आश्रम के धर्म का श्रवण करो ॥१॥

गृहस्थः पुत्रपौत्रादीन्दृष्ट्वा पलितमात्मनः॥
भाया पुत्रेषु निःक्षिप्य सह वा प्रविशेदनम् ॥२॥

गृहस्थी पुत्रपौत्रादि को और अपनी वृद्ध अवस्था को देखकर पुत्रों को अपनी स्त्री का भर सौंप कर अथवा या उसे अपने संग लेकर वन को चला जाए ॥२॥

नखरोमाणि च तथा सितगात्रत्वगादि च ॥
धारयजुहुयादग्नि वनस्थो विधिमाश्रितः ॥३॥

नख, केश, और सफेद गात्र की त्वचा को धारण करता हुआ वन में स्थित होकर शास्त्र की विधि के अनुसार अग्निहोत्र करना चाहिए ॥३॥

धान्यैश्च वनसंभूतैनीवाराचैरनिंदितैः ॥

शाकमूलफलैवापि कुर्यान्नित्यं प्रयत्नतः ॥४॥

वन में उत्पन्न हुए अथवा अनिंदित नीवारादि अन्न से शाक मूल फलों से यत्न सहित अपना निर्वाह और हवन को करै ॥४॥

त्रिकालस्नानयुक्तस्तु कुर्यात्तीनं तपस्तदा ॥
पक्षांत वा समश्नीयान्मा सान्ते वा स्वपकभुक् ॥५॥

त्रिकाल स्नानकर तीक्ष्ण तपस्या करे, पक्ष के अन्त में अथवा महीने के अन्त में भोजन करे, और अपने आप भोजन बनाकर उसका भक्षण करे ॥५॥

तथा चतुर्थकाले तु भुंजीयादष्टमेथवा ॥
षष्ठेच काले प्यथवा वायुभक्षोऽथवा भवेत् ॥६॥

चौथे पहर में अथवा आठपहर में अथवा छठे पहर में भोजन करे, या वायु का ही भक्षण करके रहे ॥६॥

धर्म पंचामिमध्यस्थस्तथा वर्षे निराश्रयः ॥
हेमंते व जले स्थित्वा नयेत्कालं तपश्चरन् ॥७॥

उष्णकाल में पंचाग्नि के मध्य में और वर्षाऋतु में निराश्रय में, और शीतकाल में जल के मध्य में बैठकर तप करता हुआ समय व्यतीत करे ॥७॥

एवं व कुर्वता येन कृतबुद्धिर्यथाक्रमम् ॥
अनि स्वात्मनि कृत्वा तु प्रव्रजेत्तरां दिशम् ॥८॥

जो क्रमानुसार इस प्रकार कर्मो के करने में समर्थ होता है वह धर्मात्मा अग्नि को अपने आत्मा में रखकर उत्तरदिशा में जाए ॥८॥

आदेहपातं वनगो मौनमास्थाय तापसः ॥
स्मरनतींद्रियं ब्रह्म ब्रह्मलोके महीयते ॥ ९॥

पीछे वन में जाकर शरीर छूटने तक मौन धारण कर जो तपस्वी अतींद्रिय, जिसको नेत्र आदि भी नहीं जान पाए, ब्रह्म का स्मरण करता है, वह ब्रह्म लोक में पूजित होता है ॥९॥

तपो हि या सेवति वन्यवासः समाधियुक्तः प्रयतांतरात्मा ॥
विमुक्तपापो विमल: प्रशांतः स याति दिव्यं पुरुषं पुराणम् ॥१०॥

जो वानप्रस्थ वन में जाकर मन को वश में कर समाधि लगाए तप करता है, वह पापों से रहित निर्मल और शांतरूप वानप्रस्थ सनातन दिव्यपुरुष को प्राप्त होता है ॥१०॥

इति हारीते धर्मशास्त्र पंचमोऽध्यायः ॥५॥

हारीत स्मृतिः का पांचवां अध्याय समाप्त हुआ ॥५॥

षष्ठोऽध्यायः छठा अध्याय

अतः परं प्रवक्ष्यामि चतुर्थाश्रममुत्तमम् ॥
श्रद्धया तमनुष्ठाय तिष्ठन्मुच्येत बंधनात् ॥१॥

इसके पीछे उत्तम चौथे आश्रम संन्यास का धर्म कहता हूँ, श्रद्धासहित उस धर्मके अनुष्ठान करने वाला मनुष्य संसार के बंधन से छूट जाता है ॥१॥

एवं वनाश्रमे तिष्ठन्पातयश्चैव किल्विषम् ॥
चतुर्थमाश्रमं गच्छेत्संन्यासविधिना दिजः ॥२॥

इस प्रकार वानप्रस्थ आश्रम में स्थिति और पापों को दूर करता हुआ ब्राह्मण संन्यास को विधि से चौथे आश्रम में जाए अर्थात संन्यास को ग्रहण करे ॥२॥

दत्त्वा पितृभ्यो देवेभ्यो मानुषेभ्यश्च यत्नतः ॥
दत्वा श्राद्ध पितृभ्यश्च मानुषेभ्यस्तथात्मनः ॥३॥

पितर, देवता और मनुष्य इनके निमित्त दान करके और पितर मनुष्य अपनी आत्मा के लिये श्राद्ध करके ॥३॥

इष्टिं वैश्वानरी कृत्वा प्राङ्मुखोदङ्मुखोऽपिवा।
अग्निं स्वात्मनि संरोप्य मंत्रवत्प्रवजेत्पुनः ॥ ४ ॥

पूर्व अथवा उत्तर को मुखकर के वैश्वानरी यज्ञ करे, फिर अपने अग्नि को मानकर मंत्र का ज्ञाता पुरुष संन्यास को ग्रहण करे ॥४॥

ततःप्रभृति पुत्रादौ स्नेहालांपादि वर्जयेत् ॥
बंधूनामभयं दद्यात्सर्वभूताभयं तथा ॥५॥

उसी समय से पुत्रादिकों का स्नेह और संभाषणादि को त्याग दे, और अपने बंधु तथा सम्पूर्ण प्राणियों को अभय दान करें ॥५॥

त्रिदंडं वैष्णवं सम्यक संततं समपर्वकम् ॥
वेष्टितं कृष्णगोवाल रज्जुमचतुरंगुलम् ॥६॥

चार अंगुल का कपड़ा और काली गौके बालों की रस्सी लिपटी हो और जिसकी ग्रांथि सम हो, ऐसे बांस का त्रिदण्ड ग्रहण कर ॥६॥

शौचार्थमासनार्थ च मुनिभिः समुदाहृतम् ॥
कौपी नाच्छादनं वासः कयां शीतनिवारिणीम् ॥७॥

शौच और आसन के विचार के लिए मुनियों की कही हुई कौपीन और शीत को दूर करनेवाली गुदडी ॥७॥

पादुके चापि गृहीयाकुर्या नान्यस्य संग्रहम् ॥
एतानि तस्य लिंगानि यतेः प्रोक्तानि सर्वदा ॥८॥

और खडाऊं इनको ग्रहण कर, अन्य वस्तु का संग्रह न करे; यह संन्यासी के सदैव काल के चिह्न कहे हैं ॥८॥

संगृह्य कृतसंन्यासो गत्वा तीर्थमनुत्तमम् ॥
स्नात्वाचम्य च विधिववस्त्रपूतेन वारिणा ॥९॥

पूर्वोक्त सम्पूर्ण वस्तुओं का संग्रह कर संन्यास लेनेवाला उत्तम तीर्थ में जाकर वस्त्रपूत अर्थात छने हुए जल से विधिसहित आचमन करे, और स्नान करे ॥९॥

तर्पयित्वा तु देवांश्च मंत्रवद्भास्करं नमेत् ॥
आत्मानं प्राङ्मुखो मौनी प्राणायामत्रयं चरेत् ॥१०॥

इसके उपरान्त देवताओं को तर्पण करके सूर्यभगवान को तथा आत्मा को नमस्कार कर, पूर्व को मुख करके मौन धारण कर तीन प्राणायाम करे ॥१०॥

गायत्री च यथाशक्तिं जप्त्वा ध्यायेत्परं पदम् ॥
स्थित्यर्थमात्मनो नित्यं भिक्षाटनमथाचरेत् ॥ ११ ॥

उसके पश्च्यात यथाशक्ति गायत्री का जप करने के उपरान्त ब्रह्म का ध्यान करे, प्रतिदिन अपनी जीविका के निमित्त भिक्षा के लिये भ्रमण करे ॥११॥

सायंकाले तु विप्राणां गृहाण्यभ्यवपद्य तु ॥
सम्यग्याचेच कवलं दक्षिणेन करेण वै ॥१२॥

सन्ध्या के समय ब्राह्मण के घर पर जाकर दहिने हाथ से भलीभांति केवल ग्रास मांगे ॥१२॥

पात्रं वामकरे स्थाप्य दक्षिणेन तु शोषयेत् ।
यावतानेन तृप्तिः स्यात्तापक्ष समा: चरेत् ॥१३॥

बांये हाथ में पात्र को रखकर उसे दाहिने हाथ से खाली करे अर्थात् पात्र में अन्न को निकाले; जितने अन्न से अपनी तृप्ति हो सके उतनी ही भिक्षा का संग्रह करे ॥१३॥

ततो निवृत्त्य तत्पात्रं संस्थाप्यान्यत्र संयमी ॥
चतुर्भिरंगुलैश्छा य ग्रासमात्रं समाहितः ॥१४॥
इसके पश्च्यात फिर लौटकर उस पात्र को दूसरे स्थान पर रखे और चार अंगुल से ढककर सावधानी से एक को ॥ १४ ॥

सर्वव्यंजनसंयुक्तं पृथक्पाने नियोजयेत् ॥
सूर्यादिभूतदेवेभ्यो दत्वा संप्रोक्ष्य वारिणा ॥१५॥

सम्पूर्ण व्यंजनों सहित दूसरे पात्र में रखे, और उसको सूर्य आदि भूत देवताओं को देकर, और जल से छिडककर ॥ १५ ॥

जीत पात्रपुटके पात्रे वा वाग्यतो यतिः ॥
वटकावन्थपणेषु कुंभीतैन्दुकपात्रके ॥१६॥

पत्तों के दौने या पात्र में संन्यासी मौन धारण कर भोजन करे, बड, पीपल, अगस्त, तेंदु, ॥१६॥

कोविदारकर्द बेषु न भुंजीयात्कदाचन ॥
सर्व उच्यते यतयः कास्यभोजिनः॥१७॥

कनेर, कदंब इनके पत्तों में कभी भोजन न करे, जो संन्यासी कांसे के पात्र में भोजन करते हैं उनको मलीन कहा है ॥१७॥

कांस्यभाडेषु यत्पाको गृहस्थस्य तथैव च ॥
कांस्य भोज़यतः सर्व किरिबर्ष प्राप्नुयात्तयोः॥१८॥

कांसे के पात्र में जो भोजन पकाता है और कांसे के पात्र में जिमाने वाले गृहस्थी को जो पाप होता है, उन दोनों के कांसे के पात्र में भोजन करनेवाले संन्यासी को लगताहै ॥१८॥

भुक्त्वा पात्रे यतिनित्यं क्षालयेन्मंत्रपूर्वकम् ॥
न दुष्यते च तत्पात्रं यज्ञेषु चमसा इव ॥१९॥

संन्यासी जिस पात्र में परतिदिन भोजन करे उस पात्र का मंत्रों से प्रक्षालन करे, वह पात्र यज्ञ के चमसा के समान कभी अशुद्ध नहीं होता ॥१९॥

अथाचस्य निदिध्यास्य उपतिष्ठेच भास्करम् ॥
जपध्यानेतिहासैश्च दिनशेषं नयेदुधः ॥२०॥

इसके उपरान्त आचमन और ध्यान करके भगवान सूर्यदेवकी स्तुति करे, और विद्वान मनुष्य शेष दिनको जप ध्यान और इतिहासों में व्यतीत करे ॥२०॥

कृतसंध्यस्ततो रात्रि नयेदेवगृहादिषु ॥
हत्पुंडरीकनिलये ध्यायेदात्मानमव्ययम् ॥ २१ ॥

सायंकाल में सन्ध्यावंदनादि कर घर में रात्रि को व्यतीत करे; अपने हृदयरूपी कमल में अविनाशी आत्मा का ध्यान करे ॥२१॥

यदि धर्मरतिः शांत सर्वभूतसमो वशी॥
प्राप्नोति परमं स्थानं यत्प्राप्य न निवर्तते ॥२२॥

यदि संन्यासी इस प्रकार से धर्म में तत्पर और सब प्राणियों में समदर्शी, वशी और शांत हो तो वह उत्तम स्थान को प्राप्त होता है, वहां जाकर फिर उसे इस संसार में आना नहीं पड़ता ॥२२॥

त्रिदंडभृयो हि पृथक्समाचरेच्छनैः शनैर्यस्तु बहिर्मुखाक्षः ॥
संमुच्य संसारसमस्तवंधनात् स याति विष्णोरमृतात्मनः पदम ॥२३॥

जो त्रिदंडी संन्यासी पृथक् पृथक ऐसा आचरण करे और धीरे धीरे जिसकी इन्द्रियाँ संसार से विरक्त हो जाए, वह संसार के सम्पूर्ण बंधनों को तोडकर अमृतरूपी विष्णुभगवान के पद को प्राप्त होता है ॥२३॥

इति हारीते धर्मशास्त्रे षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

हारीत स्मृतिः का षष्ठ अध्याय समाप्त हुआ ॥६॥

सप्तमोऽध्यायः सातवाँ अध्याय

वर्णानामाश्रमाणां च कथितं धर्मलक्षणम् ॥
येन स्वर्गापवर्गौं च प्राप्नुवंति विजातयः॥१॥

वर्ण और आश्रमों के धर्मो का स्वरूप कहा, इस धर्मका अनुष्ठान करने से द्विजातिगण स्वर्ग और मोक्षको प्राप्त करते हैं ॥१॥

योगशास्त्रं प्रवक्ष्यामि संक्षेपात्सारमुत्तमम् ॥
यस्य च श्रषणाद्यांति मोक्ष. चैव मुमुक्षवः ॥२॥

इस समय संक्षेपसे योगशास्त्रका उत्तम सार कहता हूँ, जिसके सुनने से मोक्ष की इच्छा करने वाले मनुष्य मुक्त हो जाते हैं ॥२॥

योगाभ्यासवलेनैव नश्येयुः पातकानि तु ॥
तस्माद्योगपरो भूत्वा ध्यायेन्नित्यं क्रियापरः ॥३॥

योगाभ्यास के बल से ही सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं, इस कारण योग में तत्पर होकर मनुष्य उत्तम आचरण से नित्य ध्यान करे ॥३॥

प्राणायामेन वचनं प्रत्याहारेण चेंद्रियम् ॥
धारणाभिर्वशे कृत्वा पूर्व दुर्धर्षणं मनः ॥४॥

प्रथम प्राणायाम से वाणी को, प्रत्याहार-विषयों से इन्द्रियों को हटाने से इन्द्रिय को, और धारणा -स्थिरता के कर्म से वश करने अयोग्य मन को वश में करके ॥४॥

एकाकारमनानंतं बुद्धौ रूपमनामयम् ॥
सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरं ध्याये जगदाधारमच्युतम् ॥ ५॥

एकाग्रचित्त होकर देवताओं को भी अगम्य अर्थात प्राप्ति के अयोग्य और सूक्ष्म से सूक्ष्म जो जगत के आश्रय विष्णु भगवान हैं उनका ध्यान करे ॥५॥

आत्मना बहिरंतःस्थं शुद्धवामीकरमभम् ॥
रहस्येकांतमासीनो ध्यायेदामरणांतिकम् ॥६॥

जो ब्रह्म अपने स्वरूप से बाहर और भीतर स्थित है और शुद्ध सुवर्ण की समान जिसकी कांति है; ऐसे ब्रह्म को एकान्त में बैठकर मरण समय तक ध्यान करना चाहिए ॥६॥

यत्सर्वप्राणिहृदयं सर्वेषां च हृदि स्थितम् ॥
यच्च सर्वजनैज्ञेयं सोऽहमस्मीति चिंतयेत् ॥७॥

जो सम्पूर्ण प्राणियों का हृदय है, जो सबके हृदय में विराजमान है और जो सबके जानने योग्य है, वह परमात्मा मैं ही हूँ, ऐसा चितवन करै ॥७॥

आत्मलाभसुखं यावत्तपोध्यानमुदीरितम् ॥
श्रुतिस्मृत्यादिकं धर्म तद्विरुद्धं न चाचरेत् ॥८॥

जब तक आत्मा के लाभ का सुख न हो, तब तक शास्त्रकारों ने तप ध्यान श्रुति और स्मृति को धर्म करना कहा है, आत्मा की प्राप्ति का विरोधी जो है उसको नहीं करना चाहिए ॥८॥

यथा रथोऽश्वहीनस्तु यथाश्वो रथिहीनकः ॥
एवं तपश्च विद्या च संयुत भेषजं भवेत् ॥९॥

जिस प्रकार से घोड़े के बिना रथ और सारथी के बिना घोड़ा नहीं चलता और दोनों ही परस्पर में सहायक हैं; इसी प्रकार से विद्या भी तपस्या के बिना साथ हुए कुछ काम नहीं कर सकती, विद्या, ज्ञान, तप यह दोनों मिलकर संसार के रोग की औपधी है ॥९॥

यथानं मधुसंयुक्तं मधु वान्नेन संयुतम् ॥
उभाभ्य पि पक्षा भ्यां यथा खे पक्षिणां गतिः ॥१०॥

जिस भांति मीठे से युक्त अन्न और अन्न से युक्त मीठा; और जैसे दोनों पंखों से ही आकाश में पक्षियों की गति है ॥१०॥

तथैव ज्ञानकर्मभ्यां प्राप्यते ब्रह्म शाश्वतम् ॥
विद्यातपोभ्यां संपन्नी ब्राह्मणो योगतत्परः ॥११॥

उसी भांति ज्ञान और कर्म इन दोनों से ही सनातन ब्रह्म की प्राप्ति होती है; ज्ञान और तप से युक्त और यह तत्पर हुआ ब्राह्मण ॥११॥

देहदयं विहायाशु मुक्तो भवति बंधनात् ॥
न तथा क्षीणदेहस्य विनाशो विद्यते कचित् ॥१२॥

दोनों देहों स्थूल और सूक्ष्म को शीघ्र छोडकर बंधन से छूट जाता है, इस भांति जिसका देह नष्ट हो गया है उसका नाश कभी नहीं होता ॥१२॥

मया कथितः सर्वो वर्णाश्रमविभागशः ॥
संक्षेपेण दिजश्रेष्ठा धर्मस्तेषां सनातनः ॥१३॥

हे द्विजोत्तमो ! मैंने वर्ण और आश्रमके भेद और उनका सनातन धर्म संक्षेप से तुमसे कहा ॥१३॥

श्रुत्वैवं मुनयो धर्म स्वर्गमोक्ष प्रदम् ॥
प्रणम्य तमूर्षि जग्मुर्मुदिताः स्वस्खमाश्रमम् ॥ १४ ॥

स्वर्ग और मोक्ष के देने वाले धर्म को इस प्रकार सुनकर उन हारीत मुनि को नमस्कार करके सब मुनि प्रसन्न होकर अपने अपने आश्रम को चले गए ॥१४॥

धर्मशास्त्रमिदं सर्व हारीतमुखनिः सृतम् ॥
अधीत्य कुरुते धर्म स याति परमां गतिम् ॥१५॥

जो मनुष्य हारीत मुनि के कहे हुए धर्मशास्त्र को पढकर धर्म का आचरण करता है, वह मोक्ष को प्राप्त होता है ॥१५॥

ब्राह्मणस्य तु यत्कर्म कथितं बाहुजस्य च ॥
ऊरुजस्यापि यत्कर्म कथितं पाद जस्य च ॥१६॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र को जो कर्म इसमें कहा है ॥१६॥

अन्यथा वर्तमानस्तु सद्यः पतति जातितः॥
यो यस्याभि हितो धर्मः स तु तस्य तथैव च ॥१७॥

उसके विरुद्ध जो बर्ताव करता है, वह जाति से शीघ्र ही पतित हो जाता है, जो धर्म वर्ण का कहा है वह उसी प्रकार का, उस वर्ण का है ॥१७॥

तस्मात्स्वधर्म कुर्वीत दिजो नित्य मनोपदि॥
राजेंद्र वर्णाश्चत्वारश्चत्वारश्चापि चाश्रमाः ॥१८॥

इस कारण ब्राह्मण आपदकाल को छोडकर अपने धर्म को कर, हे राजाओं के स्वामी ! चार वर्ण और चार ही आश्रम हैं ॥१८॥

स्वधर्म येऽनुतिष्ठंति ते यांति परमां गतिम् ॥
स्वधर्मेण यथा नृणां नरसिंहः प्रसीदति ॥१९॥

जो अपने धर्मको करते हैं, वह परम गतिको प्राप्त होते हैं। भगवान् नरसिंहदेव जिस प्रकार से अपने धर्म में स्थित मनुष्यों पर प्रसन्न होते हैं ॥१९॥

न तुष्यति तथान्येन कर्मणा मधुसूदनः॥
अतः कुर्वत्रिनं कर्म यथाकालमतंद्रितः ॥२०॥

उसी भांति अन्य कर्म से प्रसन्न नहीं होते, इस कारण सर्वदा आलस्य रहित होकर समय पर कर्म करता हुआ मनुष्य ॥२०॥

सहस्त्रानीक देवेशं नरसिंहं च सालयम् ॥ २१॥

सहस्रों देवताओं के स्वामी समंदिर भगवान को

उत्पन्नवैराग्यबलेन योगी ध्यायेत्परं ब्रह्म सदा क्रियावान् ॥
सत्यं खं रूपम नंतमायं विहाय देहं पदमेति विष्णोः ॥२२॥

सर्वदा परब्रह्म को उत्पन्न हुए वैराग्य के बलसे क्रियावान् योगी जो ध्यान करता है वह देह को त्यागकर सत्य सुख रूप अनंत विष्णु के पद को प्राप्त होताहै ॥२२॥

इतिहारीते धर्मशास्त्रे सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

॥ इति हारीतस्मृतिः समाप्ता॥